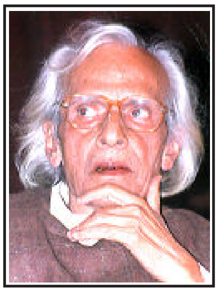

डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र

# बाजारवाद का अश्लील चेहरा
# पैकेज की गिरफ्त में पत्रकारिता के मूल्य

*पिछले लोकसभा-चुनाव ने देश के घिनौने चरित्र को बेनकाब कर सामान्य नागरिक के आश्वासन को ही कुचल दिया। राजनीतिक दलों के वरिष्ठ नायकों तक ने विरोधी दल के लिये जिस अशिष्ट और अश्लील भाषा का प्रयोग किया और पत्रकारों ने अपने धर्म-धरातल को लात मारकर पैसे की प्रभुता के सामने जिस निर्लज्ज मुद्रा में माथा टेक दिया, गांधी के देश का वह अकल्पनीय दृश्य था।*

पत्रकारिता दिवस पर हिन्दी पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा की अनायास याद आती है। हिन्दी भाषियों की हित-चिंता से प्रेरित होकर युगल किशोर शुक्ल ने 30 मई 1826 को 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन किया था। प्रकाशकीय विज्ञप्ति शुक्ल जी की हिन्दी भाषियों के प्रति मंगलेच्छा और हिन्दी पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा का संकेत देती है। 'इस कागज के प्रकाशक का इश्तिहार' शीर्षक प्रकाशकीय टिप्पणी में युगल किशोर शुक्ल ने लिखा था, ''यह उदन्त मार्तण्ड......... पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत ......... अैसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा'' ताकि ''नाना देश के सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लें'' जाहिर है, जातीय दुर्भाग्य-काल में युगल किशोर शुक्ल जैसे जागरूक शिक्षितों के हृदय में अपने समाज के समग्र अभ्युत्थान की व्याकुल चिंता थी और साम्राज्यशाही, अभिशाप से आक्रांत देश की अस्मिता के उद्धार के लिये वे नाना भूमिका में क्रियाशील थे।

पत्रकारिता के इतिहास का साक्ष्य है कि 1930 तक के पत्रकार हिन्दी पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा और मूल्यों के प्रति संवेदनशील थे। उत्तर उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के हिन्दी और भारतीय पत्रकारों की साम्राज्य शाही राजसत्ता के प्रति युसुत्यु भूमिका कितनी उग्र थी 'सारसुधानिधि', 'उचित वक्ता', 'भारत मित्र', 'मराठा', 'केसरी', 'संध्या', 'वन्देमातरम' इत्यादि राष्ट्रीय पत्रों की पुरानी जिल्द देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि जातीय अस्मिता के जागरण का वह उज्ज्वल काल था। स्मरणीय है कि लार्ट लीटन और लार्ड कर्जन जैसे अनुदार और नृशंस साम्राज्यशाही-प्रतिनिधि का वह प्रशासन-काल था, जिससे बालगंगाधर तिलक, विपिनचंद्रपाल, अरविंद घोष, सदानंद मिश्र, दुर्गाप्रसाद मिश्र, ब्रह्मवान्धव उपाध्याय और बालमुकुन्द गुप्त के जातीय संस्कार की मुठभेड़ चल रही थी। पत्रकारिता की सरणि से पत्रकारिता के मूल्य-बोध के प्रति संवेदनशील वे अपने कुल बोध-के प्रति जागरूक पत्रकार थे। ''उचित वक्ता''-संपादक दुर्गा प्रसाद मिश्र ने 12 मई 1883 ई. को समानधर्मा देशी पत्रकारों को दायित्व-सचेत करते लिखा था, ''देशी सम्पादकों सावधान!! कहीं जेल का नाम सुनकर कर्त्तव्य विमूढ़ मत हो जाना, धर्म की रक्षा करते हुए यदि गवर्नमेण्ट को सत्परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिंता है, इससे मान-हानि नहीं होती है। हाकिमों के जिन अन्याय आचरणों से गवर्नमेण्ट पर सर्वसाधारण की अश्रद्धा हो सकती है उसका यथार्थ प्रतिवाद करने से जेल तो क्या द्वीपांतरित भी होना पड़े तो क्या बड़ी बात है।'' 'मराठा-केसरी' सम्पादक बाल गंगाधर तिलक ने इसी उदग्र मुद्रा में 'अमृत बाजार पत्रिका' के सम्पादक मोतीलाल घोष द्वारा आत्मीयतापूर्वक सुझाये गये समझौता-पथ को अस्वीकार करते जवाब दिया था। 25 सितम्बर 1897 को लिखित अपने पत्र में तिलक महाराज ने अपना पक्ष स्पष्ट किया था, 'सत्य का समर्थन और राष्ट्रीय आदर्श की रक्षा करने के अपराध में यदि पूना के बदले अण्डमान में रहना पड़े तो वह श्रेयस्कर है। यदि मुझे सजा हुई तो देशवासियों की जो सहानुभूति मुझे प्राप्त होगी, वही मुझे बल देगी और इतिहास का तथ्य है कि अपनी सत्याग्रही भूमिका के लिये तिलक महाराज को मांडले जेल की यातना झेलनी पड़ी। उस यातना-काल

में मनीषी लोकनायक तिलक की मनीषा और प्रतिभा पूरी तरह जागृत थी, गीता रहस्य, आर्यजाति विषयक मूल्यवान अनुसंधान और ऋग्जुर्वेद संबंधी तिलक महाराज का अनुशीलन इसका प्रमाण है कि प्रतिकूलता की तीखी आँच में भी उनका मनोबल और प्रतिभा म्लान नहीं हुई। उनकी उम्मीद के अनुरूप ही, बल्कि उससे बढ़कर, देश की जनता ने उन्हें सम्मान दिया। 'लोकमान्य' और 'भगवान' के विरुद्ध से देशवासियों द्वारा सम्मानित होने वाले वे एक मात्र पत्र-सम्पादक और राजनेता हैं। अपने निजी स्वार्थ को ताक पर रखकर उन्होंने भारत के दुर्भाग्य से अपनी नियति को विवेकपूर्वक जोड़ दिया था। उस काल के पत्रकारों का कर्म - अनुशासन इस बोध-विवेक से निर्मित हुआ था कि 'भारत के दुर्भाग्य को अपना दुर्भाग्य और 'भारत के सौभाग्य को अपना सौभाग्य समझो नहीं तो भारत का दुर्भाग्य कदापि दूर नहीं होयगा।' (सारसुधनिधि वर्ष 2, अंक 25)

1930 के पूर्व - पश्चात् पत्रकारिता के उज्ज्वल आदर्श-धरातल में ढाही के लक्षण बाबूराव विष्णु पराड़कर और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे कृति हिन्दी सम्पादकों को चिंता-उद्वेलित करने लगे थे। स्मरणीय है, 1920 में हिन्दी के तीन तेजस्वी दैनिक पत्र का प्रकाशन हुआ था। बाबूराव विष्णु पराड़कर के सम्पादन में 'आज', माधव राव सप्रे के सम्पादन में 'हिन्दी केसरी' और गणेश शंकर विद्यार्थी के संपादन में दैनिक 'प्रताप' के प्रकाशन का यही वर्ष है। और यही काल है गाँधी के असहयोग आंदोलन का। मगर गाँधीजी, पराड़कर जी और गणेश शंकर विद्यार्थी पत्रकारिता के मूल्यों के प्रति पत्रकारों को सचेत करने लगे थे बार-बार, उस आदर्शवादी युग में। जाहिर है, पत्रकारिता के मूल्य-स्खलन को उन्होंने लक्ष्य किया था और पत्रकारिता की शक्ति की उन्हें सटीक समझ थी। गहरी वेदना के साथ गणेश शंकर विद्यार्थी ने 1930 में लिखा था, ''.... इस देश में भी समाचार-पत्रों का आधार धन हो रहा है। धन से ही वे निकलते हैं, धन ही के आधार पर वे चलते हैं और बड़ी वेदना के साथ कहना पड़ता है कि उनमें काम करने वाले बहुत से पत्रकार भी धन ही की, अभ्यर्थना करते हैं। अभी यहाँ पूरा अंधकार नहीं हुआ हैं, किन्तु लक्षण वैसे ही हैं।'' और लक्षणों के आधार पर गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'पत्रकार कला' की अपनी भूमिका में सन् 1930 में जो आशंका प्रकट की थी, वह आजाद

**बाबूराव विष्णु पराड़कर**

देश का दुर्भाग्यवश, सच सिद्ध हुआ। आजाद देश की पत्रकारिता ही नहीं, सारे अनुशासन पर, पूरे जातीय चरित्र पर मूल्यहीनता का अंधकार छा गया। पूँजी ही एकमात्र मूल्य के रूप में समाज-स्वीकृत सत्य हो गया और जीवन का चरम लक्ष्य उच्छृंखल भोग। पैसे की प्रभुता ने बाजार संस्कृति का वर्चस्व उन्नत-प्रतिष्ठित किया।

शिक्षा और चिकित्सा विभाग में पैकेज प्रणाली की अश्लील लीला पिछले कुछ दिनों से उद्धत मुद्रा में क्रियाशील हो कर सर्वाधिक संवेदनशील और मूल्यवान विभागों से जुड़े मूल्यों को खा-चबा रही है। पिछले लोकसभा-चुनाव ने देश के घिनौने चरित्र को बेनकाब कर सामान्य नागरिक के आश्वासन को ही कुचल दिया। राजनीतिक दलों

> ***पत्रकार की अपने समाज के प्रति बड़ी जिम्मेदारी है। वह अपने विवेक के अनुसार अपने पाठकों को ठीक मार्ग पर ले जाता है। वह जो कुछ लिखे, प्रमाण और परिणाम का विचार रख कर लिखे और अपनी गति-मति में शुद्ध और विवेकशील रहे। पैसा कमाना उसका ध्येय नहीं है, लोकसेवा उसका ध्येय है।***
>
> ***- गणेश शंकर विद्यार्थी***

के वरिष्ठ नायकों तक ने विरोधी दल के लिये जिस अशिष्ट और अश्लील भाषा का प्रयोग किया और पत्रकारों ने अपने धर्म-धरातल को लात मारकर पैसे की प्रभुता के सामने जिस निर्लज्ज मुद्रा में माथा टेक दिया, गाँधी के देश का वह अकल्पनीय दृश्य था। उक्त त्रासद सत्य पर जनसत्ता के अपने स्तम्भ 'कागदकारे' में नामावर पत्रकार श्री प्रभाष जोशी ने 10 मई 09 को विचारोत्तेजक टिप्पणी की, जो उनकी स्वधर्म-सजगता और गाँधी-निष्ठा को उजागर करती है। पत्रकारिता की पाप-लीला का प्रामाणिक और बेबाक बयान करते श्री जोशी ने घिनौने तथ्य की जानकारी देश के नागरिकों को दी है, ''चुनाव का सारा कवरेज सभी अखबारों में पैसा लेकर किया गया है। इसमें पत्रकारिता और पाठक को सूचना और राय देने की कोई जिम्मेदारी नहीं है। सरासर पैकेज का धंधा है और पाठक-वोटर को सरासर बुद्धू मानकर किया गया है। जिसने पैकेज नहीं लिया या छोटा लिया, लगातार रिचार्ज नहीं करवाया उसका नाम और फोटू अखबारों से गायब रहा।....'' ''दिल्ली से लगे एक राज्य के मुख्यमंत्री यह देखकर हैरान रह गये कि एक चुनाव क्षेत्र के एक उम्मीदवार की एक सभा की खबर छप जाने के बाद उसी अखबार के पहले पेज पर तीन दिन बाद बहुत महत्व के साथ बाक्स में फिर छपी। इसमें बताया गया कि लाखों की भीड़ थी। मुख्यमंत्री ने उस अखबार के मालिक को फोन किया कि यह क्या हो रहा है? मालिक ने कहा कि मालूम करके बताता हूँ। दस मिनट बाद उनका फोन आया - हाँ वह विज्ञापन है। ऐसे विज्ञापन हम छापते हैं।''

गणेश शंकर विद्यार्थी ने समाधर्मा पत्रकरों को निर्देश देते लिखा था, ''पत्रकार की अपने समाज के प्रति बड़ी जिम्मेदारी है। वह अपने विवेक के अनुसार अपने पाठकों को ठीक मार्ग पर ले जाता है। वह जो कुछ लिखे, प्रमाण और परिणाम का विचार रख कर लिखे और अपनी गति-मति में शुद्ध और विवेकशील रहे। पैसा कमाना उसका

***उत्पात रचने वाले पत्रकारों से लोग आतंकित भले रहें, समाज में उनकी कोई इज्जत नहीं है जैसे 'पैकेज' पद्धति से धन संग्रह को विक्षिप्त चिकित्सकों और अध्यापकों को एक बिगड़े बनिये से अधिक इज्जत देने को समाज में कोई तैयार नहीं है।***

ध्येय नहीं है, लोक-सेवा उसका ध्येय है।'' आज के बाजारवाद की घिनौनी सभ्यता ने इस अवधारणा को अप्रासंगिक और विवेक को कुंठित कर दिया है। इसलिये उत्पात रचने वाले पत्रकारों से लोग आंतकित भले रहें, समाज में उनकी कोई इज्जत नहीं है जैसे 'पैकेज'-पद्धति से धन संग्रह को विक्षिप्त चिकित्सकों और अध्यापकों को एक बिगड़े बनिये से अधिक इज्जत देने को समाज में कोई तैयार नहीं है। अपनी जागरूक साधना और प्रतिभ भूमिका से हिन्दी पत्रकारिता को ऊँचे सोपान पर प्रतिष्ठित करने वाले अज्ञेय ने साम्प्रतिक पत्रकारिता-परिदृश्य पर ग्लानि प्रकट करते लिखा है, ''हिन्दी पत्रकारिता के आरंभ के युग में हमारे पत्रकारों की जो प्रतिष्ठा थी, वह आज नहीं है........ आज के संपादक-पत्रकार अगर इस अंतर पर विचार करें तो स्वीकार करने का बाध्य होंगे कि वे न केवल कम सम्मान पाते हैं बल्कि कम सम्मान के पात्र हैं-या कदाचित् सम्मान के पात्र बिलकुल नहीं हैं, जो पाते हैं, वह पात्रता से नहीं, इतर कारणों से। अप्रतिष्ठा का प्रमुख कारण यह है कि उसके पास मानंदड नहीं है। यही हरिश्चन्द्र कालीन सम्पादक-पत्रकार या उतनी दूर न जावें तो महावीर प्रसाद द्विवेदी का समकालीन भी हम से अच्छा था। उनके पास मानदंड थे, नैतिक आधार थे और स्पष्ट नैतिक उद्देश्य भी। उनमें से कोई ऐसे भी थे जिनके विचारों को हम दकियानूसी कहते, तो भी उनका सम्मान करने को हम बाध्य होते थे क्योंकि स्पष्ट नैतिक आधार पाकर वे उन पर अमल भी करते थे-वे चरित्रवान थे। आज विचार-क्षेत्र में हम अग्रगामी भी कहला लें, तो कर्म के नैतिक आधारों की अनुपस्थिति में निजी रूप से हम चरित्रहीन ही हैं और सम्मान के पात्र नहीं है।''

आज के अन्धे युग में है कोई पत्रकार-कुल में आत्मावलोचन द्वारा विधायक विकल्प रचकर उज्ज्वल विरासत को समृद्ध करने वाला? ❑

---

*लेखक हिन्दी पत्रकारिता एवं साहित्य के कृती विद्वान एवं मौलिक सर्जक हैं।*